

तनाव प्रबंधन के सिद्धांत: गीता के संदर्भ में

आराधना दीक्षित

असिस्टेंट प्रोफेसर

संस्कृत विभाग

आर०बी०डी० महिला महाविद्यालय, बिजनौर

Reference to this paper should be made as follows:

Received:

Approved:

आराधना दीक्षित

तनाव प्रबंधन के सिद्धांत: गीता के
संदर्भ में

Vol. XVII, Sp. Issue June.2026
Article No.20, Pg. 156-159

Similarity Check: 17%

Online available at
<https://anubooks.com/special-issues?url=jgv-si-rbd-bijnor-june-2026>

DOI: <https://doi.org/10.31995/jgv.2026.v17iSI06.020>

सारांश

**“हजारों ख्वाहिशें ऐसी की, हर ख्वाहिश पर दम निकले,
बहुत निकले मेरे अरमान, लेकिन फिर भी कम निकले”**

(मिर्जा गालिब)

गालिब साहब कहते हैं कि इच्छाओं का कोई अंत नहीं है हम जीवन के सभी इच्छाओं रूपी समुद्र को पार करने की ख्वाहिश में तनाव की दलदल में फंस जाते हैं। तनाव मनुष्य के बाहर की परिस्थितियों से पैदा नहीं होता बल्कि वह तो केवल भीतर के हलचल से आता है। वह हमारे मन की प्रतिक्रिया है। मनुष्य हमेशा अपेक्षा रखता है। वह हमेशा सोचता है कि यह चाहिए वह चाहिए वह हर परिस्थिति से अपेक्षा रखता है और जब अपेक्षा और वास्तविकता में दूरी बढ़ती है तब तनाव का जन्म होता है। तनाव हमारी वह शारीरिक या मानसिक अवस्था है जब व्यक्ति किसी ऐसी स्थिति से गुजरता है जिस पर उसका नियंत्रण नहीं होता है जब ऐसी कोई समस्या होती है जिसका हल हमारे हाथ में नहीं होता उस स्थिति का प्रभाव हमारे शरीर पर होने लगता है। गीता में भी हमें तनाव पर नियंत्रण करने और जीवन में नयी ऊर्जा भरने के लिए कालातीत मार्गदर्शन मिलता है। गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं है अपितु यह एक पूर्ण रूप से व्यावहारिक मनोविज्ञान है जो आज के आधुनिक युग में अत्यंत प्रासंगिक है।

मुख्य शब्द

तितिक्षा, शीतोष्ण, योगस्थ, मात्रा, इन्द्रिय

गीता में तनाव प्रबंधन के से संबंधित श्लोक

गीता का प्रादुर्भाव ही अर्जुन के दुविधा ग्रस्त और तनाव में होने के कारण हुआ। उस समय जिन उपदेश से भगवान श्री कृष्ण ने भय, मोह असमंजस से ग्रस्त अर्जुन को अपने कर्तव्य पालन हेतु तैयार कर दिया वही उपदेश गीता में निबद्ध होकर आज भी हमारे जीवन में भय, मोह, दुविधा, तनाव से उभरने में सहायता करते हैं।

गीता के द्वितीय अध्याय में कर्म योग का सिद्धांत दिया गया है जिसका 47वां श्लोक है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन मा कर्मफल हेतुर्भूमा ते संगोस्त्वकर्मणि²

इस श्लोक में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि तेरा कर्म करने पर अधिकार है उसके परिणाम पर अधिकार नहीं है इसलिए तु परिणाम की चिंता मत कर वह ईश्वर के अधीन है। आशय यह है कि मनुष्य के वश में तो केवल उसका कर्म है परिणाम तो अनेक कारकों पर निर्भर करता है। जैसे परिस्थितियाँ, समय इत्यादि इसलिए फल की अत्यधिक चिंता करना व्यर्थ है। केवल तनाव को जन्म देना ही है क्योंकि यदि व्यक्ति हर समय फल के परिणाम के बारे में सोचता रहेगा तो वह अपने वर्तमान पर ध्यान नहीं दे पाएगा। इससे वह धीरे-धीरे तनाव की ओर बढ़ता चला जाएगा। इसलिए इस श्लोक के भावार्थ को समझ कर उसका पालन करें तो जीवन में काफी हद तक तनाव से मुक्त रहा जा सकता है। क्योंकि कई बार हम किसी कार्य को अधिक परिश्रम से करते हैं। और जैसे ही वह कार्य संपन्न होता है हम उसकी परिणाम की चिंता में डूब जाते हैं धीरे-धीरे यह चिंता हमारे शरीर को नुकसान पहुंचाने लग जाती है हम यह भूल जाते हैं कि कर्म को सौ प्रतिशत तक मेहनत से करना हमारे हाथ में था परंतु उसका परिणाम हमारे हाथ में नहीं है। यदि हम इस बात को स्वीकार कर लें तो हम किसी भी कार्य को आनंदपूर्वक चिंता मुक्त होकर करेंगे। कार्य के पश्चात अपने वर्तमान पर ध्यान देंगे क्योंकि परिणाम सकारात्मक भी हो सकता है नकारात्मक भी यदि परिणाम हमारे पक्ष में होने पर हम प्रसन्न होंगे परन्तु नकारात्मक होने पर निराश नहीं होंगे। इसी प्रकार कर्म को आसक्ति रहित होकर करने के लिए श्लोक है —

योगस्थः कुरु कर्मणि संगत्यक्त्वा धनञ्जय

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्व योग उच्यते।³

अर्थात् श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि है अर्जुन आसक्ति को त्याग कर सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्तव्यों को कर क्योंकि यही समत्व योग कहलाता है गीता का यह श्लोक मन की स्थिरता और समभाव से संबंधित है। जीवन में हार या जीत तो निरंतर बनी रहती है परंतु मनुष्य को योग में स्थित होकर अर्थात् अपने मन को एकाग्र करके संतुलित करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। कर्म के फल के प्रति आसक्ति नहीं रखना चाहिए। सफलता और असफलता दोनों ही परिस्थितियों में समान भाव रखनी चाहिए। इस श्लोक में “योगस्थ” शब्द का भावार्थ है — आत्मिक शांति, जब व्यक्ति योग युक्त होकर किसी कार्य को अंजाम देता है तब उसका मन बाह्य परिस्थितियों से अक्षुण्ण बना रहता है। सफलता प्राप्त होने पर वह अहंकार नहीं करता और असफलता मिलने पर वह तनाव से ग्रसित नहीं होता है।

“सिद्धय सिद्धयोरुसमो भूत्वा” से आशय है कि जीवन का हर प्रयास अपेक्षित परिणाम तो नहीं देता किंतु असफलता अनुभव और शिक्षा जरूर देती है। इसलिए परिणाम चाहे जैसा भी हो व्यक्ति को कभी भी अपने कर्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहिए है। आधुनिक समय में तो यह श्लोक अत्यंत प्रासंगिक है। विद्यार्थी जीवन के लिए तो यह श्लोक एक औषधि है क्योंकि कई बार विद्यार्थी अपने परिणामों से असंतुष्ट होकर गलत कदम उठा लेते हैं या डिप्रेशन में चले जाते हैं ऐसे में आज के हर युवा को इस श्लोक में कही गई बातों का पालन करना चाहिए तभी वह डिप्रेशन (तनाव) जैसी स्थितियों से बच सकता है। इसी प्रकार गीता के द्वितीय अध्याय में मन को संतुलित रखने के लिये यह श्लोक दृष्टव्य है—

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्ण सुख दुःखदाः

आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत।⁴

यह श्लोक जीवन के मानसिक संतुलन तथा सुख—दुख से संबंधित है। यह श्लोक बताता है कि एकादश इंद्रियों और भौतिक विषयों से उत्पन्न सुख और दुख क्षणिक है परिवर्तनशील है। यह आते और जाते रहते हैं इसलिए इन परिस्थितियों में हमें अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए बल्कि गंभीर और धैर्य पूर्वक इनको सहन करना चाहिए। इस श्लोक में मात्रा स्पर्श शब्द में मात्र का अर्थ इंद्रियां (चक्षु, श्रोत, जिह्वा, घ्राण, त्वक, पाणी, वाक, पाद, पायु, उपस्थ, मन) एकादश इंद्रिय। स्पर्श से तात्पर्य है इंद्रियों का उन विषयों से संपर्क उदाहरण के लिए जब हमारे नेत्र किसी सुंदर वस्तु को देखते हैं श्रोत किसी मधुर ध्वनि को सुनते हैं, त्वक शीत और उष्ण का अनुभव करती है तो हमारे भीतर सुख या दुख का अनुभव होता है तो अनुभूति बाहर के परिस्थितियों पर आधारित होती हैं ना की आंतरिक, इसलिए इनका अस्तित्व स्थाई नहीं होता। जैसे ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा ऋतु और वर्षा ऋतु के बाद शीत ऋतु आती है वैसे ही सुख और दुख का भी क्रम भी चलता रहता है। इसलिए व्यक्ति को इन परिवर्तनशील परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। इसी श्लोक का एक महत्वपूर्ण शब्द है “तितीक्ष्व” इसका अर्थ है धैर्य पूर्वक सहन करना” तात्पर्य है यह नहीं है कि मनुष्य दुखों के प्रति निष्क्रिय हो जाए बल्कि तितिक्ष्व का अर्थ है मनुष्य कठिन परिस्थिति में भी मानसिक संतुलन बनाए रखें विचलित हुए बिना अपना कार्य करता रहे, जो व्यक्ति सुख में अहंकार नहीं करता दुख में अत्यधिक टूटा नहीं है वही वास्तव में जीवन में आत्मिक शांति को पाता है। गृहस्थ जीवन का भी वह शांति और सुकून से निर्वाह कर लेता है।

वर्तमान समय में यह श्लोक अत्यंत प्रासंगिक है आज हम छोटी—मोटी समस्याओं और तनाव से घबरा जाते हैं चाहे परीक्षा में असफलता हो या नौकरी की कठिनाई यह हमें मानसिक रूप से कमजोर बना देते हैं। ऐसे में यह श्लोक संदेश देता है कि कोई भी परिस्थिति हो वह स्थाई नहीं है इसलिए हमें धैर्य और आत्मविश्वास बनाए रखना चाहिए स्वयं को बेहतर बनाने के लिए भी गीता में श्लोक है—

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥⁵

इस श्लोक में श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि मनुष्य अपने द्वारा अपना संसार रूपी समुद्र से उद्धार करें और अपने को अधोगति में न डालें क्योंकि यह मनुष्य अपना ही मित्र है और अपना ही शत्रु। कहने का तात्पर्य है कि व्यक्ति को स्वयं को पतन की ओर नहीं ले जाना चाहिए। अपने उचित अनुचित के विषय में खुद ही सोचना चाहिए क्योंकि मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र या शत्रु कोई है तो वह स्वयं है। श्री कृष्ण कहते हैं कि हर मनुष्य के भीतर ऐसी शक्ति विद्यमान होती है जो उसे ऊंचाई तक ले जाती है। हर व्यक्ति अपनी भावनाओं विचारों कामनाओं पर नियंत्रण कर यदि सही दिशा में प्रयत्न करता है तो उसे सफलता और उन्नति अवश्य मिलती है साथ ही उसे आत्मिक शांति की भी प्राप्ति होती है। इसकी विपरीत यदि वह आलस्य, अज्ञान क्रोध लोभ मोह और नकारात्मक विचारों के प्रभाव में रहता है तो निश्चित रूप से वह स्वयं का पतन करता है। हम हमेशा सफलता और असफलता के लिये दूसरे को दोष देते हैं परंतु गीता का यह श्लोक हमें यह बताता है कि हमारे उत्थान या पतन का कहीं ना कहीं उत्तरदायी हम स्वयं हैं। यदि हम अपने भीतर संयम, परिश्रम अनुशासन लाएं तो निश्चित रूप से जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना आसानी से कर सकते हैं। आज वर्तमान युग में इस श्लोक का यह संदेश अत्यंत प्रासंगिक है। तनाव प्रतिस्पर्धा और निराशा के माहौल में हमारा मन ही उसे संभालता है या तोड़ता है। अगर हम इस श्लोक को आध्यात्मिक दृष्टिकोण से देखें तो यदि मनुष्य अपने मन का आत्म साक्षात्कार करें और सही दिशा में कदम बढ़ाएं तो मन नियंत्रित और शुद्ध हो जाता है। वही साधक का मित्र बनकर उसे परमात्मा की प्राप्ति की तरफ भी ले जाता है किंतु जब मन अनियंत्रित होता है तो वह साधक की साधना में बाधा उत्पन्न करके आध्यात्मिक प्रगति को रोक देता है। इस भौतिक जगत में भाग दौड़ के जीवन में अध्यात्म भी हमें कई बार तनाव में जाने से रोकता है क्योंकि हम सब ने किसी न किसी तीसरी सत्ता पर सब परिस्थितियां छोड़ देते हैं और हमें यह विश्वास हो जाता है कि जो वह जो भी करेगा वह अच्छा ही करेगा। गीता का सार भी यही कहता है। गीता में न जाने कितने ऐसे

श्लोक हैं जो हमें तनाव, घबराहट आदि से मुक्त करने का कार्य करते हैं बस आवश्यकता है हमें उन श्लोक का अध्ययन करने की उनके संदेश को अपने जीवन में उतारने की।

निष्कर्ष

गीता का तनाव प्रबंधन की दृष्टिकोण से अध्ययन करके यह स्पष्ट होता है कि तनाव केवल वर्तमान युग की समस्या नहीं है बल्कि मनुष्य के मन का आंतरिक स्वभाव है जिसका प्रभाव हर युग में होता रहा। मानवीय स्वभाव के विशेषज्ञ चिंतक आज की तनावजन्य जीवन का केवल एक ही कारण मानते हैं अपनी प्राचीन योग जीवन शैली को त्याग कर आधुनिक भौतिकवादी चकाचौंध को अपनाना।

गीता में तो इन तनाव से मुक्ति पाने के लिए समग्र उपचार पद्धति है। क्योंकि गीता के ज्ञान का क्षेत्र अत्यंत और विस्तृत है। युद्ध भूमि में अर्जुन को भी अनेक भ्रम, तनाव, मोह और निराशा ने घेर लिया था तब भगवान श्री कृष्ण द्वारा दिया गया गीता का यह उपदेश केवल अर्जुन के लिए नहीं अपितु समस्त मानवता के लिए तनाव मुक्ति के हेतु मार्ग प्रशस्त करता रहा। गीता के निष्काम कर्म योग का सिद्धांत भी मनुष्य को वर्तमान में रहते हुए कर्म करने की प्रेरणा देता है। जिससे मानवीय शांति और संतुलन बना रहता है। अतः कहा जा सकता है। गीता के उपदेश केवल हमें आध्यात्मिक रूप से समृद्ध नहीं करते हैं अपितु दैनिक जीवन की चुनौतियों का सामना करने में अत्यंत उपयोगी है। आज के प्रतिस्पर्धा, भाग दौड़ और मानसिक दबाव के वातावरण में गीता का उपदेश जीवन को संतुलित और तनावमुक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ

1. सोशल मीडिया
2. श्रीमद् भगवद् गीता, द्वितीय अध्याय पृ0सं0-43, गीता प्रेस गोरखपुर
3. श्रीमद् भगवद् गीता, द्वितीय अध्याय पृ0सं0-43, गीता प्रेस गोरखपुर
4. श्रीमद् भगवद् गीता, द्वितीय अध्याय पृ0सं0-34, गीता प्रेस गोरखपुर
5. श्रीमद् भगवद् गीता, षष्ठ अध्याय, पृ0सं0-85, गीता प्रेस गोरखपुर